

कवर गुलाबी
1000
रंग हरा



(1936-2009)

ध्यान पत्रिका

संस्थापक : डॉ० शम्भू नाथ

M.Sc., Ph.D.

वर्ष-21

दिसम्बर-2011

अंक-12



ध्यान पत्रिका का वार्षिक शुल्क 20/- (बीस) रुपये मनी आर्डर
अथवा कैश : अपना पता एवं सम्पर्क सूत्र सहित इस पते पर भेजें :-

-श्री राकेश गर्ग, केशव लेस इम्पोरियम

दुकान नं० 91, लाजपत राय (रेहड़ी) मार्केट, हिसार-125001

प्रकाशक

ध्यान सत्संग सभा

हिसार (हरियाणा), मो. : 09416164702, 09416041346

ध्यान द्वारा तन-मन स्वस्थ

✍ श्री राकेश गर्ग (09896789678)

ध्यान का संबंध प्रायः मन और मस्तिष्क से जोड़ा जाता है। जिस प्रकार तन के लिए भोजन और व्यायाम आदि जरूरी हैं : उसी प्रकार मन और मस्तिष्क के लिए ध्यान अनिवार्य है। यह ईश्वर प्राप्ति या मोक्ष का साधन है। चाहे आस्तिक हो अथवा नास्तिक : ध्यान का महत्वपूर्ण स्थान है। इसका सीधा संबंध मनुष्य के तन या भौतिक शरीर से भी है।

ध्यान ही वह माध्यम है : जिसके द्वारा व्याधि रहित शरीर की प्राप्ति संभव है। मन ही नहीं, तन को भी बदलता है ध्यान।
जब आंखें बंद करके बैठते हैं तो ध्यान विचलित होता नजर आता है। उसे संभालना मुश्किल हो जाता है।

करत-करत अभ्यास के जड़ मति होत सुंजान।

रस्सी आवत-जावत से, सिल पर पड़त निशान॥

ध्यान (Meditation) वस्तुतः करने की चीज नहीं है। कुछ न करना तथा कुछ न सोचना ही ध्यान है। मन रूपी स्लेट को धों- पोंछ देना ही ध्यान है। तन भी मन का ही एक स्वरूप है। मन की स्थूल सृष्टि है तन।

मुख्य रूप से तीन शरीर हमारे इस दृश्यमान शरीर में मौजूद हैं :- पहला है भौतिक शरीर, दूसरा है मानसिक शरीर, तीसरा है चेतना या जीवात्मा।

भौतिक शरीर स्थूल है तथा चेतना या जीवात्मा सूक्ष्म है। इनके बीच उपस्थित है :- मानसिक शरीर या मन। ये तीनों एक-दूसरे से इस प्रकार जुड़े हुए हैं : कि इन्हें अलग-अलग करके देखना असंभव प्रतीत होता है। इसका कारण है मन की चंचलता। मन की चंचलता कम हो : तो चीजें अपने वास्तविक स्वरूप में दिखाई पड़ती हैं।

मन की गति दो प्रकार की है - बाह्य और आंतरिक।

बाह्य गति वह है : जो भौतिक पदार्थों की ओर अग्रसर होती है। मनुष्य की भौतिक इच्छाओं का उदय मन की बाह्य गति के कारण ही होता है।

हमारा तन अर्थात् स्थूल शरीर भी एक पदार्थ ही तो है। शरीर मन के अनुसार बदलता है। जैसी मन की इच्छा: वैसा भौतिक शरीर। मन में रोग के प्रति आशंका है : तो मन रोगी, अन्यथा स्वस्थ। इसलिए मन में अपने भौतिक शरीर के प्रति सदैव सकारात्मक विचार रखें। हमेशा मन में यह भाव बना रहे: कि मैं पूर्ण रूप से स्वस्थ हूं।

मन की दूसरी गति है: आंतरिक। इसका अर्थ है मन स्थूल शरीर की अपेक्षा सूक्ष्म शरीर की ओर अग्रसर हो रहा है।

यहां हम अपने मन द्वारा अपनी चेतना से एकाकार होने की ओर अग्रसर होते हैं। इसको कहते हैं: मन द्वारा मन के स्रोत की यात्रा। यही आत्मज्ञान है। जब यह यात्रा संपन्न हो जाती है तो बाहर की यात्रा की आवश्यकता ही नहीं रहती। □

साधना में ठहराव : एक अनुभूति

✍ श्रीमती ऊषा गर्ग (08901265520)

साधक का भगवान् की तरफ आने के चार कारण हो सकते हैं :-

- (1) **पहला आर्त**—अर्थात् कोई ऐसा दुःख, जिससे वह पूरी तरह हार गया हो। जिससे उबरने का कोई उपाय न बचा हो। तब वह भगवान् की शरण में आता है।
- (2) **दूसरा धन की कामना।**
- (3) **तीसरा जिसको भगवान् को जानने की रुची हो।**
- (4) **चौथा जिसको भगवान् की भक्ति प्राप्त करनी हो :**

ऐसे लोग भगवान् की शरण में आते हैं। साधक की साधना आरम्भ में भली प्रकार चलती है। उसमें गम्भीरता तथा रुचि बनी रहती है। वह जल्द से जल्द अपनी समस्याओं को दूर करना चाहता है : भगवान् भी उसी हिसाब से उस पर कृपा बरसाने लगता है। वह यह नहीं देखता कि उसके भाग्य में उसकी मांग की हुई वस्तु लिखी है या नहीं। यदि उसकी

मांगी हुई वस्तु भक्त के हित में है : तो भगवान् उसे पूरी करता है। यदि कोई इच्छा पूरी होने में साधक का अकल्याण हो सकता है : तो भगवान् दीवार बन जाते हैं। यहीं से साधक के अन्दर विचार पनपने लगते हैं :-

या तो वह आगे बढ़ता है, या फिर वापसी के रास्ते को अपना लेता है। वह भगवान् के मौन आशीर्वाद को समझ नहीं पाता। जो साधक भगवान् की इस कृपा को समझ जाते हैं : वे साधना में आगे बढ़ जाते हैं। जैसे कि बाईबल में भी लिखा है :

“ अपनी बुद्धि का भरोसा सर्वथा छोड़कर : प्रभु का निरन्तर चिन्तन करो, वही तुम्हें प्रकाश देगा। ”

ध्यान के माध्यम से ही हम ज्ञान को प्राप्त कर सकते हैं। आरम्भ में आधा-आधा घन्टा : कम से कम दो बार। ध्यान में नेत्रों को बन्द करने के उपरान्त कई विचार आएँगे। हमें विचलित हुए बगैर बैठना है। अगर कुछ सैकेण्ड भी ध्यान लग गया, तो समझो कि कई संस्कारों को काट दिया। इस तरह अभ्यास करते करते : प्रभु स्वयं ध्यान में बैठने के लिए प्रेरित करने लगेंगे और ध्यान का समय भी बढ़ने लगेगा। ध्यान में आनन्द आने लगेगा। आगे ऐसा वक्त आ जायेगा : समर्पण की भावना आ जायेगी। इससे अहम् समाप्त होगा और अखण्ड सुख की प्राप्ति होगी।

जिन्दगी में भूलकर : न पाप कर। हर घड़ी : परमात्मा को याद कर ॥

भूल से हो जाये : कोई पाप। बैठकर कुछ पल : पश्चाताप कर ॥

आयेगा परमात्मा तुझको नजर। आईना दिल का तू पहले साफ़ कर ॥

जिन्दगी में भूलकर न पाप कर। जितना भी करना है, बस ध्यान कर : तू ध्यान कर ॥

विधी :- किसी भी सुख आसन में बैठकर : चाहे पलंग या कुर्सी। जमीन पर बैठना है : तो आसन बिछा कर बैठना। बैठते ही आंखें बन्द करके एक बार भगवान् का नाम लेना : जो आपको पसन्द हो। बस आपका काम समाप्त : समझो भगवान् का काम आरम्भ। □



(1936-2009)

जीवन : एक तपस्या है या भोग ?

✍ डॉ० शम्भू नाथ

समाज में केवल दो ही तरह के मनुष्य पाए जाते हैं :-

1. एक जो यह समझते हैं कि यह जीवन तो केवल बड़े से बड़े भोग के लिए ही है।
2. लेकिन कुछ दूसरे ऐसे व्यक्ति भी समाज में मिलते हैं, जो बौद्धिक विकास के आधार पर तरह-तरह के भोगों से दूर रहना: समाज को सिखाते हैं। स्वयं भी ऐसा करते हैं और भोग के रास्ते को बहुत गलत मानते हैं।

समाज पहले तरह के लोगों को भोगी कहता है और दूसरे तरह के लोगों को तपस्वी। साधारण मनुष्य इन दोनों रास्तों में फंस जाता है। कोई किसी रास्ते पर चल पड़ता है, तो कोई किसी और रास्ते पर। इन दोनों में से किसी भी रास्ते पर चलने वालों में : कोई ऐसा व्यक्ति नहीं मिलेगा, जिसे इन रास्तों पर चलकर पूर्ण संतुष्टि मिली हो। यह सोचकर कि पूर्ण संतुष्टि की अवस्था शायद इतनी दूर है कि अभी आयी नहीं है : वे अपने रास्ते पर लगे रहते हैं।

कुछ लोगों के मन में यह प्रश्न उठता है कि पूर्ण संतुष्टि चाहे दूर भले हो : लेकिन समय बीतने के साथ धीरे-धीरे अपने जीवन में संतुष्टि बढ़नी तो चाहिए ही।

लेकिन समाज में यही देखा जाता है : कि कभी तो वह संतुष्टि की ओर बढ़ता है और बढ़ते-बढ़ते एकाएक असन्तुष्टि सामने आ खड़ी होती है : चाहे वह भोग के रास्ते पर चल रहा हो या तपस्या के रास्ते पर। इस तरह से जब काफी समय बीत जाता है तो वह महसूस करने लगता है कि वह जीवन में उतार चढ़ाव के बन्धन में ही बंध गया है। वह लगातार किसी

एक ही दिशा में नहीं बढ़ रहा है। इससे उसके मन में ग्लानि पैदा होने लगती है और वह एक रास्ते को छोड़कर दूसरे रास्ते को भी आजमाने की कोशिश करता है।

लेखक का अपना विचार है : कि न तो भोग का रास्ता गलत है और न ही तपस्या का।

सही भोग के मार्ग पर भी ईश्वर मिलेगा और सही तपस्या के मार्ग पर भी ईश्वर मिलेगा। गलत भोग या गलत तपस्या के मार्ग पर: केवल असन्तुष्टि ही मिलेगी।

मन असीम का एक अंश है।

इसीलिए सीमित भोग से सन्तुष्ट नहीं होता।

भोग केवल उस चीज का करते हैं : जो वास्तविकता में है। अन्दर की दुनियां में भी एकमात्र वास्तविक तत्व वह है : जिसे ब्रह्म कहते हैं। ब्रह्म बाहर के अनन्त वास्तविक वस्तुओं का आधार है। लेकिन बाहर के जगत में अनन्त वास्तविक वस्तुएं हैं : जिनका सम्पर्क मन इन्द्रियों के माध्यम से ही करता है। सारा भोग मन और वस्तु के सम्पर्क में है। बाहर की वस्तुओं का सम्पर्क मन इन्द्रियों की मदद से करता है।

ब्रह्म के क्षेत्र का सम्पर्क :

मन ब्रह्म के क्षेत्र में विचरण करके करता है।

जब मन ब्रह्म से सम्पर्क करता है, तब उसे एक बहुत बड़ा सुख मिलता है। इस सुख को ही आनन्द कहते हैं : या यह कहें कि आनन्द अनन्त का सुख है। तरह-तरह के खाने, देखने, छूने इत्यादि के सुख, बाहर के जगत में है। बाहर के जगत में खण्डित चीजों का सुख है। ब्रह्म के क्षेत्र में अखण्ड का सुख है। जैसे-जैसे वह ध्यान के अभ्यास द्वारा असीम को भोगने में समर्थ होता जाता है : उसके जीवन में धीरे-धीरे पूर्ण सन्तुष्टि बढ़ने लगती है और लगातार बढ़ती ही रहती है। इसलिए वह सन्तुष्टि

और असन्तुष्टि के बन्धन से मुक्त होने लगता है। यही जीवन है और यही जीने की कला है। यह जीवन और यह कला: दोनों ही हमें ध्यान के अभ्यास के रास्ते पर मिलते हैं। जैसा ऊपर हमने देखा तपस्या का अर्थ है: भोग को कम करना। लेकिन भोग को कम करने के लिए आज के समाज में बहुत से ऐसे तपस्वी मिलते हैं : जो बुद्धि द्वारा समझ करके और साधकों से बातचीत करके, उन्हें यह सिखाने और समझाने की कोशिश करते हैं : कि उन्हें अमुक चीज का प्रयोग या आदत छोड़ देनी चाहिए।

छोड़ना या न छोड़ना : एक क्रिया है

कुछ लोग, बौद्धिक स्तर पर जो समझ में आ गया कि यह नहीं करना चाहिए : उसे नहीं करते और न करने को सही समझते हैं। दूसरे लोग जो नहीं समझ पाते : वे भी सुनी-सुनायी बातों के आधार पर तय कर लेते हैं कि क्या नहीं करना है। इस तरह से व्यक्ति सही और गलत के बन्धन में जकड़ता चला जाता है। जो भी सही या गलत बन्धनों में जकड़ जाएगा: वह धीरे-धीरे दु:खी जीवन की ओर अग्रसर होता चला जाएगा। इस बन्धन से छुटकारा तो केवल उसी को मिलता है : जो क्रिया के एक-दूसरे आधार को भी अनुभव करने लगता है। क्रिया का दूसरा आधार है : मनुष्य के अन्दर के संस्कार। इन संस्कारों की शक्ति बड़ी बलवान होती है। वह इतनी बलवान होती है : जितनी बलवान रावण की आसुरी शक्ति थी। जब कोई मनुष्य जीवन में सबसे पहली बार किसी चीज का भोग करता है, तो दो सम्भावनाएं होती हैं : कभी तो वह उस भोग की ओर अधिक मुड़ जाता है और कभी ऐसा भी होता है कि वह कोशिश करने पर भी उस भोग की ओर नहीं मुड़ पाता। यहां पर समझने के लिए लेखक अपने जीवन का एक उदाहरण देना चाहेगा।

17-18 साल की उम्र के समय अपने मित्रों का केवल साथ देने के लिए पान खाने की कोशिश की, लेकिन खा नहीं सका। शायद पान खाने का संस्कार पूर्व जन्म में पूर्ण रूप से मिट चुका था।

इस तरह हम देखते हैं कि जब हम बौद्धिक स्तर पर बातचीत करके कुछ क्रियाओं को सही समझकर छांटने का प्रयत्न करते हैं और गलत क्रियाओं को छोड़ने का प्रयत्न करते हैं : तब वास्तव में हम अज्ञानतावश केवल अपने संस्कारों को दबाने का ही प्रयत्न करते हैं। इसी बात को दूसरे शब्दों में इस प्रकार भी कहा जा सकता है : कि बुद्धि के स्तर पर समझ कर कुछ भी छोड़ने में हमारा अहं ही क्रियाशील रहता है। ऐसे ही कुछ पकड़ने में भी अहं (Ego) ही क्रियाशील रहता है : चाहे हम समझकर ही क्यों न कुछ पकड़ें। अहं ही सारे दु:ख का कारण है और अहं ही सही और गलत क्रियाओं की सीमा में जीवन को जकड़ देता है: और यह हमें दु:ख की ओर अग्रसर कर देता है।

इस तरह हम देखते हैं कि इस तपस्या के गलत रास्ते में चूँकि अहं को मिटाने की शक्ति नहीं है : इसीलिए शायद दु:ख मिटाने की शक्ति भी नहीं है।

तपस्या का अर्थ भोग को छोड़ने और छूटने : दोनों ही हो सकते हैं। छोड़ने में अहं(Ego) क्रियाशील है।

जब हम ब्रह्म के रूप में व्याख्या कर रहे थे तब हमने देखा कि छूटने में अहं क्रियाशील नहीं हो सकता : यह स्पष्ट है। अतः होने की शक्ति के आधार पर तपस्या, जो कि एकमात्र ध्यान के अभ्यास द्वारा सम्भव है: सही तपस्या है और यही हमें सारे बन्धनों से मुक्त करने की दिशा में अग्रसर करेगी। □

मन के धर्म

📞 श्री सत्य नारायण शर्मा (09416164702)

मन का पहला धर्म यह है कि अग्नि की तरह इसका कभी पेट नहीं भरता। जब तक ईंधन डाला जाएगा : तब तक अग्नि कभी नहीं कहेगी

कि बस हो गया। करोड़ों रुपयों के मालिक: और धनाढ्य होने के प्रयास में दिन रात लगे हैं।

मन का दूसरा धर्म है अपने मनचाहे संसार को: जीवन भर मुट्ठी में रखना। इसीलिए दिन भर वह भूतकाल के अनुभवों एवं भविष्य की आशंका में डोलता रहता है। जो मिला है: वह कहीं छिन न जाए। जिसके लिए प्रयास कर रहे हैं, कहीं वह इच्छा अपूर्ण न रह जाए।

मन की तीसरी प्रवृत्ति यह है कि एक कामना की पूर्ति होते ही: कुछ ही समय में अन्य कामनाओं का उदय होने लगता है। उसका एक और स्वभाव है: किसी वस्तु या व्यक्ति पर आसक्त हो जाना। आसक्ति भी चिंता-फिक्र का दूसरा नाम है, जो आपके जीवन को खंडित कर देगी।

इसी से इसकी एक और उपमा रावण के सिर से दी जाती है। जितने सिर काटो: उतने ही वापिस हाजिर। अब सभी कामनाएं तो पूरी होने से रही। और अतृप्त कामनाओं से जीवन में कटुता, विषाद, डिप्रेशन, कुंठा आदि: घर कर जाते हैं। जीवन जर्जर बन जाता है: बंजर की तरह।

यदि मन की यही प्रवृत्ति है:

तो फिर इस अंधकूप में गिरा ही क्यों जाए?

अपने मन के विरुद्ध इसी निरंतर संघर्ष के कारण आज का आदमी शाम तक थक कर चूर हो जाता है और किसी तरह घर आकर कुछ खा-पीकर, पत्नी-बच्चों से बेरुखी दिखाकर बिस्तर पर पड़ जाता है। थकावट मन की इस सतत आवाजाही से होती है: काम के बोझ से इतनी नहीं।

यदि आप पूरे मनोयोग से कोई कार्य कर रहे हो और मन को इधर-उधर डोलने का मौका नहीं मिले: तो कोई भी काम आपको थका नहीं सकता। देह भले कुछ देर के लिए थक जाए, पर मन प्रफुल्लित रहा: तो थोड़ी ही देर में हम वापस तरोताजा हो जाएंगे।

सुबह जल्दी उठना, व्यायाम करना, सात्विक भोजन, अध्यात्म का पठन-मनन, नियमित दिनचर्या आदि: जो चीजें शुरू-शुरू में विषवत लगती हैं, वे अन्ततः अमृत हो जाती हैं, आजमा कर देख लें। आशय यही है: कि बुद्धि-विवेक के उपयोग से मन नियंत्रित हो सकता है। नियमित ध्यान (Meditation) द्वारा मन अपनी मनमानी करने से रूक सकता है। आज से 50-60 वर्ष पहले लोगों का जीवन बेहद सीधा- सादा था। लोगों का मन संयमित रहता था। समाज में उस संयम को सम्मान दिया जाताथा, इसीलिए उनमें आज जैसी मानसिक उद्धिग्नता और छटपटाहट नहीं थी। व्यक्ति के जीवन में संतोष और सादगी थी। देखादेखी ही करनी है: तो पूर्वजों की सादगी की करें; और किसी की नहीं।

अभ्यास द्वारा : मन वश में

ईश्वर सबके अन्दर है।

ईश्वर की शक्ति पाने का रास्ता भी आंतरिक ध्यान ही होगा।

इन्द्रिय जगत में ध्यान से कर्म करने में बुद्धि का प्रयोग है।

आंतरिक क्षेत्र में सब कुछ हो जाता है: किया कुछ भी नहीं जाता। दिल धड़कता है, खाना पचता है, नींद आती है, श्वास चलती है आदि।

करनी द्वारा कर्मेन्द्रियाँ बाह्य जगत में ही कार्यरत रहती हैं।

यद्यपि उनका संचालन आंतरिक क्षेत्र से ही होता है।

हमें सब कुछ देने वाला कर्म है: पाना इन्द्रिय जगत की वस्तु हो अथवा आंतरिक जगत की शक्ति। मन का विचरण ही कर्म है। मन के विचरण से मन में भाव उत्पन्न होते हैं। बुद्धि कर्मेन्द्रियों को कर्म की दिशा देती है और समय आने पर फल की प्राप्ति हो जाती है। यदि ईश्वरीय शक्ति पाना हो: तो हमें मन को मात्र बाह्य जगत से अन्दर की ओर मोड़ने की कला सीखनी है। मन सुख का भूखा है। आंतरिक सुख की कमी में यह

इन्द्रिय सुख की ओर सरलता से चला जाता है और इन्द्रिय सुख में लिप्त हो जाता है। सोते समय थकावट के कारण वह इन्द्रिय सुख को भोग करने में असमर्थ है।

**मन सरलता से आंतरिक क्षेत्र का सुख पाने हेतु
आंतरिक क्षेत्र में भ्रमण करने लगेगा।**

“होनी” प्रकृति की शक्ति है। करनी की शक्ति की कमी में मन को होनी की शक्ति मिलेगी और आंतरिक क्षेत्र में उसका भ्रमण आरम्भ हो जाएगा। अभ्यास करने से वह आंतरिक क्षेत्र की गहराईयों में भ्रमण करने लगेगा। श्रीमद्भगवतगीता 6.35 के अनुसार :-

**चंचल असंशय महाबाहो ! कठिन साधन घना।
अभ्यास और विराग से पर पार्थ ! होती साधना ॥**

हे महाबाहु कुन्ती पुत्र ! निःसन्देह चंचल मन को वश में करना कठिन है, किन्तु उपयुक्त अभ्यास द्वारा तथा विरक्ति द्वारा ऐसा संभव है।

**आंतरिक क्षेत्र का भ्रमण: एक कर्म है, जिसके माध्यम से मन को
आंतरिक क्षेत्र का ज्ञान होने लगता है।** शरीर के अन्दर शक्तिशाली पराजगत और परा से पराजगत है। पराजगत सूक्ष्म भावों का जगत है। यही जीवात्मा का संसार है। मनुष्य अपनी जीवात्मा: महसूसियत की शक्ति के रूप में अनुभव करता है, जो मन के नाम से जाना जाता है।

**जिस मन के सारे अनन्त अचेत स्तर:
चेत स्तर में परिवर्तित हो जाएं, वही ईश्वर है।**

इस तरह कोई भी अंश ध्यान के लम्बे अभ्यास से कभी ना कभी पूर्णता की ओर अवश्य पहुंचेगा। श्रीमद्भगवतगीता 6.36 अनुसार :-

**जीता ना जो मन : योग है, दुष्प्राप्य मत मेरा यही।
मन जीत कर, जो यतन करता : प्राप्त करता है वही ॥**

जिसका मन उच्छंखल है: उसके लिए आत्म-साक्षात्कार (Self Realization) कठिन कार्य होता है किन्तु जिसका मन संयमित है और जो समुचित उपाय करता है : उसकी सफलता ध्रुव है। ऐसा मेरा मत है।

भावों का क्षेत्र जीवात्मा का क्षेत्र है। भावातीत क्षेत्र (Transcental Field) परमात्मा का क्षेत्र है। जीव जब चाहे भावातीत होकर (Self Realized) : पूर्णता की ओर अग्रसर करने हेतू परमात्मा से शक्ति लेता ही रहे। श्रीमद्भगवतगीता 6.47 अनुसार :-

**सब योगियों में मानता मैं: युक्ततम योगी वही।
श्रद्धा-सहित मम ध्यान धर: भजता मुझे जो नित्य ही ॥**

समस्त योगियों में से जो योगी अत्यन्त श्रद्धापूर्वक मेरे परायण है। अपने अन्तःकरण से मेरे विषय में सोचता है और मेरी दिव्य प्रेमाभक्ति (Self Realization) करता है: वह योग में मुझसे परम अन्तरंग रूप में युक्त रहता है और सबों में सर्वोच्च है। यही मेरा मत है। अध्यात्म जगत में: पिछले जन्मों के स्थूल कर्मों के मन पर पड़े हुए छाप बताया गया है। भिन्न-भिन्न मन पर पड़े हुए छापों के कारण: दूसरे जन्मों में जीवों के भिन्न-भिन्न शरीर और भिन्न-भिन्न स्वभाव होते हैं। इन कारणों को संस्कार कहा जाता है। जन साधारण ने संस्कार का नाम ‘पाप’ रख दिया है:-

**मेरे पाप कर्म ही तुझसे, प्रीति ना करने देते हैं।
कभी जो चाहूं, मिलूं आपसे: रोक मुझे ये लेते हैं ॥** □

सद्गुरु की प्राप्ति

☎ श्री जयरामदास (09354311862)

जाकी जा पर सत्य सनेहु: सो तेहि मिलहि न कछु सन्देहु।

स्वामी सियाराम जी के जीवन-चरित्र में प्रकाशित एक नाम पर मेरा मन आकर ठहर गया : नाम था स्वामी नारायण हरि। दर्शनों हेतु शीघ्र ही आज्ञा

मिल गई। मैं श्री फतेह चन्द चौधरी के साथ अल्मोड़ा पहुंचा। मेरे मन में जो छवि थी : वह वहां साक्षात् देखकर मैं तो फूला नहीं समाया। ऐसे हुई मुझे श्री सद्गुरुदेव जी की प्राप्ति। श्री महाराज जी के उपदेश बड़े ही सरल और स्पष्ट थे, जैसे :-

**जिन कारणों के परिणाम स्वरूप जो कार्य सम्पन्न होता है :
उन कारणों के न रहने से वह कार्य नहीं हो सकता।**

तात्पर्य यह कि मनुष्य सुख-दुःख के आधार पर जो पाप या पुण्य कर्म करता है : वे सब उसे राग-द्वेष रूपी बन्धन में बांध कर जन्म-मरण के चक्कर में डालते हैं, जिससे उसके दुःखों की समाप्ति नहीं होती। इसके विपरीत जो व्यक्ति यथार्थ कर्म करता है : अर्थात् संसार के सुख-दुःखों को आने-जाने वाला समझ कर: उनकी चिन्ता छोड़कर प्राणी मात्र के हित के लिये चित्त लगाकर और मनुष्योचित कर्तव्य मान कर कर्म करता है (अथवा भगवत्-आज्ञा समझकर भगवत् प्रसन्नता के लिए कर्म करता है) : उसको उसके वे विविध प्रकार के व्यवहार रूप किये गये कर्म : राग-द्वेष उत्पन्न न करते हुए, जन्म-मरण रूपी बन्धन से छुड़ाने वाले हो जाते हैं। इसीलिये बुद्धिमान को चाहिये कि सुख की इच्छा और आसक्ति का त्याग करके अपना कर्तव्य पालन करे।

साधना के विषय में वे प्रायः कहते थे : साधना तो वास्तव में इतनी ही है : कि सदैव सजग रहा जाये, ताकि कोई कायिक, वाचिक और मानसिक दोष न होने पाये। इसके अतिरिक्त शरीर में सुख, बुद्धि और विषयों में सुख प्रतीत होने के कारण जो संसार में आसक्ति हो गई है और जिसके कारण अनेक प्रकार के दुष्कर्म बन जाते हैं : उन्हें विवेक बुद्धि से काटने में साधक सदैव प्रयत्नशील रहे। ऐसा करते-करते मन निर्मल होकर प्रज्ञा की प्राप्ति करेगा : अर्थात् व्यक्ति में यह यथार्थ समझ आ जायेगी कि जगत में ऐसी कोई वस्तु नहीं है: जिसमें सुख हो, या मैं (Ego), मेरापन

किया जाये। व्यक्ति को जीवन पर्यन्त इस तरह व्यवहार करना है :
जिससे उसे जगत की आसक्ति कम होकर शान्ति की प्राप्ति हो। □

जनता रोती है : रावण नहीं रोता

✍ डॉ० शिव ओम अम्बर (09415333059)

मैंने कहा : हे रावण!

तेरे दस मुखों में बीस आँखें : कमाल है।

लंका के राजा : तू बेमिसाल है॥

लेकिन तू जब रोता होगा :

वो दृश्य कितना अजीब होता होगा ?

रावण बोला – चुप, बेवकूफ! ऐसा नहीं होता।

रावण के राज्य में जनता रोती है : रावण नहीं रोता होता॥

यह संसार : एक पागलखाना

✍ डॉ० जगदीश गांधी, संस्थापक-प्रबन्धक

सिटी मौन्टेसरी स्कूल, लखनऊ

परमात्मा जब जब मानव शरीर में राम, कृष्ण, बुद्ध, ईशु, मोहम्मद, नानक, बहाउल्लाह या आज के युग में महात्मा गांधी, अन्ना हजारे अथवा स्वामी रामदेव आदि के रूप में अवतरित हुआ : तब तब हमने उसे वनवास, सूली, कारावास के अलावा तरह तरह के कष्ट दिये।

यह संसार एक पागल खाना है। जब कोई आध्यात्मिक, चिकित्सक, अवतार या सन्देश वाहक के रूप में हमारा इलाज करने आता है : तो हम अपने रक्षक को ही नहीं पहचानते और उसे अनेक प्रकार से कष्ट देते हैं। इसीलिए कहा जाता है कि :

“जब जब राम ने जन्म लिया, तब तब पाया बनवास”

यदि हम अपने महान् अवतारों द्वारा झेले गये भीषण कष्टों को याद करे : तो हमें अपने जीवन में आने वाले कष्ट बहुत छोटे प्रतीत होंगे। हमें अपने अवतारों के संघर्षपूर्ण जीवन से बाधाओं से लड़ने की अपार शक्ति अंदर (जीवात्मा) से प्राप्त होगी। □



"Gandhiji gave us freedom and we gave him bullets in return. The Mahatma shook the mighty British Empire not by brute force, but by his 'tapasya'. He raised us from dust & made us walk with our heads erect. To us he was like a father, mother and Acharya. Though dead, he was sure to guide us & serve as a beacon-Light to us".

Homage on these lines was paid to the Mahatma in the Punjab Legislative Assembly on Saturday, March 6, 1948. □



ध्यान माला

श्री कुबेर प्रसाद 'गुप्त कबीर'

दोहा-21 : क्रमशः मृदुतर है सभी, सुखकर जीवन हेतु।

जल सम पड़े प्रभाव ही, सिद्धि प्रमाणक केतु॥

मन यदि पत्थर के समान कड़ा है: तो प्रतिक्रियाओं का प्रभाव बहुत अधिक समय तक बना रहेगा। यदि मिट्टी के समान है: तो प्रभाव पहले से कुछ कम देर तक रहेगा। यदि बालू के समान है: तो प्रभाव और कम देर तक रहेगा। लेकिन मन यदि जल के समान है: तो प्रभाव पड़ते ही मिट जायेगा। अर्थात् उनसे होने वाले सुख-दुख का प्रभाव क्षणजीवी या नगण्य होगा और जिसका मन साधना द्वारा इस प्रकार का हो जाता है: वे सिद्ध कहलाते हैं, अर्थात् मन पर किसी भी प्रतिक्रिया का नगण्य प्रभाव पड़ना सिद्ध होने का अकाट्य प्रमाण है। □

नोट :- 1. ध्यान पत्रिका का वार्षिक शुल्क 20/- रुपये मनी आर्डर अथवा कैश : अपने Address एवं Contact No. सहित इस पते पर भेजें :-

—Sh. Rakesh Garg, Keshav Lace Emporium,
Shop No. 91, Lajpat Rai (Rehri) Market, Hisar-125001

2. प्रत्येक रविवार को बुधला सन्त मन्दिर नज़दीक बस स्टैंड, हिसार में पारिवारिक ध्यान सत्संग शाम को 4 बजे से 6 बजे तक होता है। आप सभी सपरिवार सादर आमन्त्रित हैं।

3. ध्यान (Meditation or Self Realization) सम्बन्धी अपने अनुभव, लेख, आलोचना (Comments), अनुभूतियां, प्रश्नोत्तर, शंका-समाधान इत्यादि इस पते पर भेज सकते हैं :-

—सुरेश कुमार गुप्ता
1618, अर्बन एस्टेट-II,
पुष्पा कम्पलैक्स के पीछे, हिसार-125005

PRINTED MATTER